Chapter-6

—: षष्ट परिछेदः—

उपसंहारः—

महात्मा कबीर इत्यादि का उपदेश जिज्ञासुओं में आध्यात्मिक चेतना जगाने का था । जीवों को आवागमन से मुक्ति दिलाने का था । किन्तु यह ज्ञान लाखों में एकाद ही कोई भाग्यवान ग्रहण कर अपनी आत्मिक चेतना जागृत करके परमात्मा से मिलकर एकत्व प्राप्त कर लेता है। जैसे गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।। 1—

अतः अति अल्प मात्रा में ही कोई जिज्ञासु इसको समझ कर अपने जीवन को धन्य बना लेता है । शेष साधक वर्ग अपने अपने कर्म और संस्कारों के अनुरुप सहज योग के मार्ग पर आसन्न होकर मन्द गति से ही क्यों नहीं,फिर भी निश्चयात्मक कदम रखते आगे बढ़ते जाते हैं । भले ही वे चींटी की गति से क्यों नहीं चलते । इस मार्ग पर चलने का प्रयत्न कभी विफल नहीं होता । इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने जिज्ञासुओं को आश्वासन देने के हेतु कहा कि —

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।। 2—

इसके अतिरिक्त एक और गंभीर प्रश्न इस भौतिकता संपन्न वर्तमान ने हमारे संमुख खड़ा कर दिया है । कबीर, अखा आदि के सनातन ,सार्वदेशीय उपदेश की उपादेयता इस युग में क्या है ? अधिक से अधिक लोग सुख और

1:— गीता, अध्याय—6, श्लोक—40

2:— वही, अध्याय—2,

भोगों की प्राप्ति के लिए भागे जा रहे हैं । यही मृग मरिचिका इन्हें सबसे ज्यादा आकृष्ट करती हैं । वर्तमान काल ने हमारे संमुख समाज के दो विरोधाभासी चित्र प्रस्तुत किए हैं । एक है धार्मिक कियाकाण्ड प्रेरित त्यौहार ,मेले इत्यादि। दूसरा चित्र है चकाचौंध करने वाली भौतिक जीवन और भोग विलास की ओर इतनी ही तेज गति की दौड़ । समाज की इन दोनों दिशाओं की दौड़ बड़ी विस्मयकारक घटना है ।

हजारों लाखों की भीड़ इन धार्मिक कियाकर्मों के लिए एकत्र होती है । किसी विशेष अवसर पर नदियों में स्नान करने के लिये लाखों की भीड़ एकत्र होती है । इसी तरह मंदिर–मस्ज़िदों–गिरिजाघरों में भी लाखों धार्मिक लोग इकट्ठे होते हैं । भीड़ के कारण दुर्घटनाएँ होती है , लेकिन कोई परवाह नहीं। हर वक्त ऐसे मौके पर भीड़ बढ़ती ही जाती है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज में धार्मिक अवस्थाओं में वृद्धि हो रही है धार्मिक आस्थायें लोगों को प्रचुर मात्रा में आकर्षित करती है क्योंकि धर्म स्थानों की भीड़ से तो हमें यही ज्ञात होता है । अतः क्या लोग अधिक से अधिक मात्रा में धर्म परायण बनते जा रहे हैं । धर्म परायणता का अर्थ है मन की एक विशेष अवस्था। यहाँ मनुष्य सात्विक भावों में आसन्न होकर एक विशेष मनोवैज्ञानिक अवस्था में प्रतिष्ठित करता है । उसे काम कोधादि विकारों से परहेज हो जाती है । किन्तु इस भीड़ के मनुष्य समुदाय में हम कभी ऐसी मानसिकता का दर्शन नहीं कर सकते । यह भीड़ तो दोनों दिशाओं में तेज गति से दौड़े जा रही है भौतिक सुख समृद्धि के लिए भी और धार्मिक अवसरों पर भगवान के स्थूल स्वरुप के दर्शन के लिये भी वह बड़े उत्साह के साथ सम्लित हो जाती है ।

एक बड़ी विचित्र मानसिकता से सभर वर्तमान मनुष्य ने अपनीं जीवन प्रणाली बना ली है । ऐसी स्थिति में मनुष्य अपनी मानसिकता अपने संस्कार, जैसे के वैसे ही रखकर व्यवहार करता है । संस्कारों के परिमार्जन की उसे कभी आवश्यकता नहीं पड़ती । धर्म को वह एक सीमित अवस्था तक ही ग्रहण

करता है । वैसे तो वह धर्म को छोड़ना पसंद नहीं करता । सारे संसार के मनुष्यों ने अपने –अपने धर्मो को जीवन में कुछ न कुछ स्थान दे ही दिया है । किन्तु धर्म के सारतत्व की खोज करने में उसे ज्यादा रुचि नहीं है । उसने धर्म को श्रद्धा भाव से पकड़ रखा है । जिसमें अंध श्रद्धा भी सम्मिलित हो जाती है । यह धर्म परस्ती है । इसी कारण से विश्व के विभिन्न समाजों में जो धर्म चिंतन हुआ, वह एक जीवन शैली न बनकर धर्म के दायरें बन गये । जैसे भेड़ बकरियों का वाड़ा होता है । वाड़े में रहने वाले निश्चित बाह्य–आचरण ,अपनी अलग सी पहिचान में ही ज्यादा व्यस्त रहते हैं । उसमें कलांतर में जाति –गत –समाजगत श्रेष्ठता के अहंकार का मिश्रण होता गया, और अन्य जाति –समाज के प्रति असहिष्णुता का उदय होने लगा। इसी प्रकिया से हमारा ही धर्म श्रेष्ठ है ऐसी मानसिकता बनने लगी । और विभिन्न धर्मो के लोग धर्मान्ध बनते गये । परधर्मी पर घृणा , फिर अत्याचार , धर्म परिर्वतन , यह सब धर्म के नाम जो हजारों सालों से चला आ रहा है वह मनुष्य जीवन की एक महान करुणान्ति का है । कई शताब्दियों से मनुष्य धर्म के नाम पर एक दूसरे पर अमानुषीय व्यवहार और अत्याचार करता आया है । हजारों लाखों की संख्या में निर्दोष लोगों हत्या करने में उसे कभी संकोच नहीं हुआ । धर्म का मुल मंत्र दया , प्रेम है । इसके विरुद्ध मनुष्य ने धर्म के नाम क्रूरता और घृणा को ही अपने धर्म के प्रसार का साधन बना दिया ।

परमात्मा को प्राप्त करने की साधना का प्रमुख अंग दया और प्रेम है । लेकिन मनुष्य ने तो साधना को ही छोड़ दिया है । वह तो धर्म को ऊपर–ऊपर से ही ग्रहण करता है । उसे तो वाह्य आडंबर और अपने धर्म की श्रेष्ठता के प्रदर्शन में ही अधिक रुचि है। धार्मिक संप्रदायों ने भी मनुष्य को और छोटे–छोटे दायरों में विभक्त कर दिया है । विभिन्न संप्रदाय भी मनुष्य को सही दिशा में नहीं ले जा रहे है । वे भी उसे अपनी मानसिक विकृतिओं में उलझाते जा रहें है ।

उसके मन में दया, प्रेम, सहिष्णुता का सिंचन तो दूर रहा, उसे और अधिक संकुचित बनाते जा रहे है । धार्मिक प्रवचन , मेले, विधि, उत्सव इत्यादि तो हर समय होते रहते हैं । लेकिन ये सब मनोरंजन के एक मात्र तमाशा बन जाते हैं । मनुष्य के व्यवहार आचरण में परिर्वतन लाने में उनका कोई भी योगदान नहीं है । ये सब धर्म संप्रदायों के नाम पर संपत्ति इकट्ठी करने के व्यापार केन्द्र ही बन जाते है ।

मनुष्य में गुणात्मक परिवर्तन करने की क्षमता क्या धर्म में नहीं है ? क्या मनुष्य इसी तरह धर्म के नाम पर लड़ता रहेगा ? इन दो प्रश्नों हमें स्वस्थता से चिंतन करना चाहिए। संसार में हजारों वर्षों में अनेक महान पवित्र आत्माओं ने जन्म लेकर मनुष्य को सत्य समझाने का प्रयत्न किया है । मनुष्य उनके जाने के बाद उनके उपदेश को ग्रहण करने के बजाय उलटा ही व्यवहार प्रारंभ कर दिया ।

अतः हमें आज के युग में मनुष्य जीवन को सत्य से आलोकित करने वाले संतों के मनीषियों के साहित्य के अध्ययन द्वारा उसे जागृत करने और सही दिशा इंगित करने के प्रयत्न करते रहना चाहिए । **Religion is an opium,** ऐसा कहकर धर्म ही इन दोनों की जड़ समझने वालों ने सही चिंतन नहीं किया है । धर्मो रक्षति रक्षितः। यह शास्त्र वचन बहुत ही बड़ा सत्य है । उसका स्वीकार करके ही हमारा कल्याण है । वाह्य आडंबर , क्रियाकाण्ड हमें धर्म के सार तत्व से कहीं दूर ले जाते है और धर्म के प्रति हमारी आस्थाओं को डिगमिगाते है । संतों ने मनुष्य मन को , जो सब दोषों की जड़ भी हो सकता है और सारे गुणों का भंडार भी हो सकता है उसके परिमार्जन को ही धर्म कहा है।

सांप्रदायिक आचार और वाह्य क्रियाकाण्डों में व्यस्त मनुष्य धर्म के निर्जीव कलेवर को ही पकड़े बैठा रहता है। उनके लिये धर्म एक सामाजिक सांस्कृतिक व्यवहार ही बन जाता है । उसकी एकता,संरक्षण और उसका संवर्धन ही उनकी चिंता का विषय बना रहता है इसलिए जब कभी भी दूसरे धर्म

और संप्रदाय के लोग उसके संप्रदाय की मर्यादा में प्रवेश करके अपना प्रभाव उनपर डालने का प्रयत्न करने लगते है , संप्रदाय और धर्म में संघर्ष शुरु हो जाता है । अन्ततोगत्वा यह संघर्ष बहुत बड़े रक्त रंजित धर्म के सार तत्व को नहीं समझने वाले कट्टर पंथी बन जाते है और दूसरे धर्म और संप्रदायों से उन्हें हमेंशा अपने अस्तित्व का ही खतरा बना रहता है । जो संप्रदायिक परंपराएँ बनी है , उनके लिये उन्हें गहरा प्यार हो जाता है । उनमें उन्हें अपने पारिवारिक , सामाजिक जीवन की रक्षा का भी पूर्ण वातावरण मिलता है। उसकी एकता और अखण्डता में शांति और सुरक्षा का विश्वास प्राप्त हो जाता है , एक स्वकेंद्री , संकुचित अनुदार मानसिकता से सारा समाज का वातावरण व्याप्त हो जाता है । ऐसे कट्टर पंथी संप्रदायों में बुद्धि और तर्क का काम ही प्रधान मिलता है । विश्वास और अन्धानुकरण का स्वरुप ले लेता है । धर्म ज़नून औश्र संप्रदाय की श्रेष्ठता का अहं भाव पूरे संप्रदाय पर छा जाता है ।

ऐसे सामाजिक माहौल में मनुष्य अपने सार तत्व को आत्मा को भूल ही जाता है , क्योंकि आत्मा को समझने के लिये जो गुण आवश्यक है , वे हमारे सांप्रदायिक आचार विचार हम खो बैठते है । प्रथम तो हम अहंकार और अहंकार के सामाजिक स्वरुप के शिकार बन जाते है । इसके बाद दूसरे दोष जैसे क्रोध, क्रूरता और लोभ आदि , का प्रवेश हो जाता है । ये सारे धर्म विरोधी गुण और संप्रदायों में प्रच्छन्न रुप से आदर का अर्थात धर्म–संप्रदाय की सेवा के आवश्यक गुण माने जाते हैं ।

सदियों से धर्म के नाम बड़े–बड़े युद्ध कलान्तर से होते चले आ रहे हैं । मध्य युग में यूरोप में धर्म युद्ध (Crusade) हुए तो हिन्दुस्तान पर धर्म के नाम पर आक्रमण हुए । अभी–अभी आधुनिक काल में यही घटना क्रम युगोस्लाविया, अफ़गानिस्तान एवं रशिया के कुछ मुस्लिम बहुमत प्रदेश में हम देख रहे है ऐसा धर्म की भ्रान्त और विकृत धारणाओं के कारण ही होता है ।

क्या ऐसी घृणित घटनाओं मनुष्य जाति के बचाने का कोई मार्ग नहीं है ? क्या इन सब घृणास्पद घटनाओं के मूल में धर्म है ? यदि है तो ऐसे धर्म को हमें छोड़ देना चाहिये । यही उनका तार्किक उत्तर हो सकता है । किन्तु स्वस्थता से सोचने से हमें उसका सही उत्तर मिल जाता है । मनुष्य की एकता में धर्म कभी बाधक नहीं बन सकता । वह तो मानव समाज की एकता का आधार ही है । 'वासुधैव कुटुम्बकम्', यह वैदिक ऋिषियों की यह उदात्त भावना उच्च आध्यात्मिक अनुभूति के बाद प्रचलित हुई थी । संसार के प्रत्येक समाज में ऐसे महान चिंतक और दृष्टा हुए हैं, जिन्होंने अपनीं आध्यात्मिक अनुभूतिओं के फल स्वरुप सत्य ज्ञान प्रकाश से मानव समाज को आलोकित किया । कालान्तर से अनुयायियों की अज्ञानता के कारणधर्म अनेक संप्रदायों में विभक्त हो गया है । उन्हें तोड़ेने की आवश्यकता है । इसलिये ऋषि–मुनि और मध्यकाल और आज के संतों की आत्मिक अनुभूतिओं का सही परिप्रेक्ष्य में समझने की हमें आवश्यकता है । जिसस काइस्ट और महमद पैगम्बर ने कभी सांप्रदायिकता का उपदेश नहीं किया है । इन्होंने तो सारी मानव जाती के कल्याण का विचार किया है । आज जो कुछ हम देख रहे है वह उनके उपदेश से कोई नाता नहीं रखता है । वह बर्बरता के सिवा और कुछ नहीं है ।

आज मनुष्य को धर्म का सही रुप समझने की आवश्यकता है धर्म का मूल उद्‌देश्य आत्मिक अनुभूति है । इसके द्वारा परमात्मा से आत्मा का एकत्व स्थापित करना ही हमारा परम उद्‌देश्य है । इस अनुभूति से ही सारे मनुष्य समाज की एकता की अनुभूति की जा सकती है । फिर आपस में कैसे झगड़े रह सकते हैं । सब एक ही पिता के पुत्र हैं यही ज्ञान हमें ऋषि–मुनि और संतों महात्माओं ने दिया है ।

आधुनिक काल में भी ऐसे तत्व चिंतक और आत्म ज्ञानी की यदि हम खोज करें तो मिल सकते है । स्वामी राम जो हिमालय में रहकर अपनीं साधना में व्यस्त रहते है उनको हिमालय में ही रहकर साधना करने वाले एक

ख्रिस्ती संत का मिलाप हुआ था , उनके साथ जो उनका वार्तालाप हुआ था वह संसार के धर्मों की एकता के संबंध में सही प्रकाश डालने वाला है और बहुत ही उपयोगी है , और इसी में हमारे प्रश्नों का उत्तर भी मिल जाता है ।

वह ख्रिस्ती सन्त ने स्वामी राम के पूछने पर बताया :–

After having made A comparative Study of all the great religions of the world . I found out that the fundamental truths of all great religions are one and the same. If this is true , then why all this hatred , jealousy and dogma ? That led me to realize that even the most ancient vedic religion , which is in fact universal, was lost and the priestly wisdom of India was not able to convey the message of the vedic sages . Yet these priests call themselves the knowers of the vedas. Shankara in this commentry on the Bhagaved Gita clearly explains that the Gita is a modified version of the Vedas and that lord Krishna is only a narrator . Truth always existed. The founders and great messengers of the religions of the world were only narrators , but actually, the sages and not the reincarnations of God are the founders of the noble truths. This ifself is proof that great recincarnations of God only modified the message given by the sages. the reincarnations of God are the massengers of the sages . They only change the baskets and the eggs are the same, 1-

---

1:– Swami Rama, Living with the Himalayan Masters,Edited by Swami Ajaya, P.298-99'P.298-99, Himalayan Books (Publishing Division of the English Book Store) 19-L Connaught Place, New Delhi-110001- 1984.

धर्म कैसे समाज को बनाता है और बाद में भ्रान्त धारणाओं के कारण उसमें कैसे विकृतियाँ प्रवेश कर जाती है उसपर इस महान ख्रिस्त्री संत ने अच्छा प्रकाश डाला है । उन्होंने कहा है :—

" Religions play their important part in binding society as a whole . The spiritual leaders and founders of religions are accepted as authorities, but according to my analysis, the wisdom given by the sages is eternal and perfect . The great messengers and leaders of various religions are only channels of the ancient sages. Worshipping the leaders and founders of religions is just like creating a dogma and cult without any solid philosophy behind it. There is no hero worship in following the path of the sages, for their teachings are universal and for all times . When religious teachers could not impart practical knowledge to their students this corrupted the religions of the world. They said "you should have faith in God,"and then dismissed the genuine quest of the soul . the doctrine of faith in the east and west is being exploited by all the preachers of the world . Modern man is confused more by the preachers than by his own problems . Social problems and religious problems create serious conflicts and prejudices which become difficult for one to dispel . what is the worth of that religion which creates bondage and misery for man ? Freedom is one of the prime messages given by the sages , but it has been obstructed so much that today's religious man lives like a slave , terrified and obsessed by evil and devils . He is more concerned about sin and satan than self realisation and God.

The philosophy of the new age demands complete modification of such religious concepts but , alas, there hasn't been a revolution in any of the religions so for . Without going through a socioreligious revolutionary process, the flowers of the true religion can not bloom.

कबीर , दादू दयाल और अखा पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है , किन्तु इन संतों के उपदेश को आज हम भूल बैठे हैं । इन संतों ने जो सनातन सत्य संसार के संमुख रखा है , वह प्रत्येक मनुष्य की अमूल्य धरोहर है । अपने जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिये उसे उस उपदेश को सदा अपने हृदय में संजोये रखता है । इन संतों के अमृत वचनों से ही संसार का आज कलुषित वातावरण शुद्ध हो सकता है । अन्यथा कहीं रास्ता दिखता नहीं है । इन संतों की वाणी में ही हमें जीवन की समस्याओं में हम समाधान खोज सकते है । उनके दिखाए रास्ते पर चलने से संसार में शांति और सुख स्पष्ट दिखाई देता हैं ।

ऐसे आध्यात्मिक ज्ञान से ही मनुष्य संकीर्ण धार्मिक भावनाओं से ऊपर उठ सकता है । समाज में आज वैचारिक क्रांति की आवश्यकता है । तभी वह अपनीं संकीर्णता स्वार्थ और धर्म संबंधी भ्रान्त धारणाओं को छोड़ सकता है। अध्यात्म ज्ञान ही वैचारिक क्रान्ति का आधार बन सकता है। और आध्यात्म ज्ञान का प्रकाश कबीर, दादू दयाल जैसे संतों की वाणी में बहुत सरलता से उपलब्ध है ।

विश्व के सभी वर्तमान समाजों में धर्म भावना तो पाई जाती है , लेकिन यह घर्म भावना संकीर्णताओं से आबद्ध है । विश्व के धर्म मनुष्य समाज को धर्म मार्ग पर प्रेरित कर उसके स्वाभाविक गंतव्य लक्ष्य अर्थात् आत्मिक ज्ञान के लिये अग्रसर क्यों नहीं कर पाते हैं ? इसका यही कारण दिखाई देता है कि धर्म ज्ञान के प्रर्वतक जो अपने से संलग्न मानव समुदाय ने एक खास धर्म या

सम्प्रदाय के दायरे में स्वयं को बॉध दिया, और धर्म के संलग्न आचार विचारों के साथ समाज, देश भाषा और उनके साथ जुड़े रहन–सहन के संस्कार और नियम इत्यादि का ऐसा मिश्रण किया है कि आत्म ज्ञान से संबंध न रखने वाले कई अनावश्यक आचार विचारों का धर्म के मूल उपदेश में संमिश्रण हो गया । इसके साथ उस धर्म ज्ञान के आदि उपदेश को ही ज्ञान का अंतिम दृष्ट के रुप में उसकी पूजा और अर्चना करनें वाले उस समुदाय विशेष ने एक चुस्त धर्म और सम्प्रदाय का स्वरुप ग्रहण कर लिया । इस धर्म के अनुयायी अपने धर्म को ही श्रेष्ठ समझने लगे । अन्य देश और समाज में जो धर्मवेत्ता थे उनका उपदेश सत्य नहीं था । हम ही एक मात्र सत्य के ज्ञाता है , ऐसा अभिमान और असहिष्णुता पूरे समाज का लक्ष्य बन गया ।

इस विशेष परिस्थिति का मूल कारण अवतारवाद है । विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय इस अवतारवाद के ही संतान है । राम, कृष्ण, बुद्ध, काइस्ट , महमद, पयगंबर इत्यादि जो उपदेशक हुए, उन्होंने कभी स्वयं की पूजा का उपदेश नहीं दिया । उन्होंने स्वयं को परमात्मा का प्रतिनिधि बताया और आत्मदान द्वारा परमात्मा की ही भक्ति का उपदेश दिया । उन सबने अपने आप में परमात्मा की खोज करने को कहा । किसी ने यह नही कहा कि मेरा मंदिर या मस्जिद बनाकर उसमें मेरी प्रतिमा की स्थापना करके मेरे ही स्वरुप की पूजा करो । किन्तु सारे धार्मिक संप्रदायों ने यही किया है जो उन्होंने नहीं कहा था। अन्तिम धार्मोपदेशक महमद पयगंबर के बाद भी ऐसे ही उसी कक्षा के कई संत, महात्मा हुए जिन्होंने लोगों को जगाने का काम किया । लेकिन हमलोग अपने बुद्धि और विचार के किवाड़ सांप्रदायिक दायरों में ऐसे बाँध कर बैठे है कि ज्ञान की एकाद किरण भी हमारे दिमाग में प्रवेश नहीं कर पाती है ।

राम, कृष्ण, बुद्ध, काइस्ट, महमद पयगंबर आदि का उपदेश मूलतः एक ही है कुछ भाषा की भिन्नता है कुछ कहने का तरीका अलग है । बात एक ही है। अपने आपमें परमात्मा को ढूँढ़ों । वह कहीं बाहर नहीं है ।

उपनिषद में ऋषि ने यही कहा था:–

ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं

स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ।। 1:–

*　　　*　　　*

उद्धरेत्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।। 2:–

*　　　*　　　*

योगी युज्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।

एकाकी सतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।। 3:–

*　　　*　　　*

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मायया ।। 4:–

*　　　*　　　*

ध्यानेननात्मानि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।

अन्ये सांख्येन योगेने कर्मयोगेने चापरे ।। 5:–

क्राइस्ट ने भी कहा है " माँगो और तुम्हें दिया जायेगा , ढूँढ़ों और तुम पाओगे , खटखटाओ ओर तुम्हारे लिये खोल दिया जायेगा । 6:–

1:– मुण्डकोपनिषद, द्वितीय मुण्डक, द्वितीय खण्ड, श्लोक–6

2:– गीता, अध्याय–6, श्लोक–5

3:– मैथ्यु 7:7

4:– गीता, अध्याय–6, श्लोक–10

5:–वही, अध्याय–18, श्लोक–61

6:– वही, अध्याय–13, श्लोक–24

मध्ययुग के महान धर्मोपदेशक कबीर, दादू, नानक, इत्यादि ने यही कहा । अवतारवाद ने मनुष्य समाज के आपसी सौहार्दपूर्ण व्यवहार को बहुत बड़ी क्षति पहुँचाई है । अवतारवाद ने विभिन्न मनुष्य समाजों में संप्रदायों रुपी बड़ी–बड़ी दिवारें खड़ी कर दी है । अतः दार्शनिक विचारों के आदान प्रदान को वह रोके बैठी है । इससे मनुष्य कल्याण के आध्यात्मिक विकास में बहुत बड़ी बाधा पैदा हुई है । इसको तोड़ने के लिये कबीर, दादू, नानक, अखा, जैसे तत्व चिंतको के उपदेशों का समाज में अधिक से अधिक प्रचार और प्रसार होना चाहिये । वैसे तो कबीर , दादू, नानक, एवं अखा के नाम पर भी संप्रदाय बन गए है । ये सब सत्य धर्म के प्रकाश में बहुत बड़ी रुकावटें हैं मनुष्य को इन सांप्रदायिक कुपमंडूकता से बाहर निकलना है ।

हमारे देश के वर्तमान राजकीय जीवन में भी सांप्रदायिकता ने कई समस्यायें पैदा कर दी हैं । उसके प्रतिकार के लिये हमारे राजनीतिक चिंतकों ने 'धर्मनिरपेक्षता' का नारा लगाया । लेकिन यह एक नाकारात्मक अभिगम है । विश्व में कहीं भी जाइए मनुष्य किसी न किसी रुप में धर्म का सहारा लिए बैठा है । वह श्रद्धा या अंधश्रद्धा से किसी न किसी जगह अपने आपको जोड़े हुए बैठा है इसलिए संप्रदाय जो कहता है उसी को मनुष्य अंतिम सत्य मान लेता है। अतः धर्म निरपेक्षता का सिद्धांत सफल नहीं हो सकता है । कुछ दिनों तक लोगों की आस्थायें धर्म से हटकर कहीं और जोड़ सकता है , किन्तु मनुष्य सदा के लिये नास्तिक नहीं रह सकता , क्योंकि आत्मा और परमात्मा का नाता जुड़ा हुआ है आत्मा परमात्मा का अंश है । उसे कैसे वह भूल सकता है । अतः आवश्यकता है आत्मा और परमात्मा के संबंध को जागृत करना। उन दोनों के बीच जो व्यवधान है उनको हटाना। जब वह व्यवधान हट जाए तो मनुष्य को सारा संसार अपने ही परिवार जैसा दिखाई देगा । वह सबका " आत्मवत् सर्वभूतेषू" दृष्टि से देखने लगेगा ।